बच्चे, अभिभावक और शिक्षक

✍ **निशी**

हम सब अपने बच्चों को स्कूल में दाखिला कराते समय स्कूल और अध्यापकों से कुछ अपेक्षाएं भी पाल लेते हैं। ये अपेक्षाएं बेहतर शिक्षण के साथ, बेहतर भौतिक संसाधनों की भी होती हैं। लेकिन आगे चलकर ये अपेक्षाएं बच्चे के बेहतर परीक्षा–परिणाम पर आकर सिमट जाती हैं। हम बच्चे के प्राप्तांकों के आधार पर ही बच्चे का मूल्यांकन करते हैं और संतुष्ट नहीं होने पर शिक्षकों और स्कूल पर दोषारोपण शुरू कर देते हैं।

जरूरत इस बात की है कि हम अंकों के दायरे से बाहर निकलकर अन्यान्य क्षेत्रों में हुए विकास को भी देखें। शिक्षक को भी बच्चे की प्रकृति और क्षमताओं को समझना होगा, तभी शिक्षक और अभिभावक बच्चे के बेहतर विकास के साझेदार हो सकेंगे।

आजादी के बाद से लेकर अब तक देखें तो इन वर्षों में कई सारे बदलाव दिखाई देते हैं जिनमें शिक्षा से अपेक्षाएं बदली हैं। स्कूलों में बच्चों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। निजी स्कूलों की संख्या तेजी से बढ़ी है। बच्चों को सिखाने के तरीकों में बदलाव की बात उठने लगी है। सबसे बड़ी बात कि समुदाय एवं अभिभावकों की भागीदारी अब दिखाई देने लगी है। अभिभावकों में बच्चों की शिक्षा के प्रति जागरूकता आई है और वे अब स्कूल में पहले से अधिक संख्या में अपने सरोकार दर्ज कराने लगे हैं।



बच्चे के लिए पहली पाठशाला उसका परिवार होता है, जहां वह माता–पिता के साथ सबसे अधिक समय व्यतीत करता है। वहां उसे अलग–अलग तरह के अनुभव होते हैं जिनकी मदद से वह सीखने की शुरुआत करता है। इसी संदर्भ में एन.सी.एफ. 2005 बच्चों की शिक्षा में माता–पिता एवं समुदाय की भूमिका को रेखांकित करते हुए कहता है कि "बच्चे का परिवार / समुदाय और स्थानीय वातावरण उसके प्राथमिक संदर्भ का निर्माण करते हैं जिसमें सीखना होता है... स्कूल निर्देशित शिक्षा का स्थान होता है, लेकिन ज्ञान सृजन में तो निरंतरता

होती है अतः वह स्कूल के बाहर भी होता रहता है। अगर अध्ययन सतत है, और वह स्कूल के बाहर भी होता है यानि घर में, कार्यस्थल में, समुदाय आदि में...।" एन.सी.एफ., बच्चे के स्कूली ज्ञान को बाहरी ज्ञान के साथ जोड़ने के लिए अभिभावकों एवं समुदाय की स्कूल में भागीदारी सुनिश्चित करने की अनुशंसा करता है। इसलिए यह बात उचित लगती है कि यदि अभिभावक एवं शिक्षक कुछ साझे मुद्दों पर मिलकर काम करें तो इससे न केवल बच्चे को ज्यादा बेहतर तरीके से समझने में मदद मिलेगी अपितु इससे उसके सीखने में भी फर्क आएगा। इस नजर से देखें तो बच्चों की शिक्षा में उनके माता–पिता की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका बन जाती है।

मेरे दिमाग में कई बार यह सवाल उठता है कि कितने माता–पिता अपनी इस जिम्मेदारी को जानते व समझते हैं? जो जानते हैं, उनमें से कितने इसका निर्वहन कर पाते हैं? कितने स्कूलों में बच्चों के स्कूली ज्ञान को बाहरी ज्ञान के साथ जोड़ने की कोशिश की जाती है? कितने स्कूल एवं शिक्षक इस बात को समझते हैं?



इस तरह से सोचने पर मुझे दिखाई देता है कि शिक्षा के बदलते स्वरूप एवं इसमें हो रहे बदलावों के साथ–साथ शिक्षा में निजी हस्तक्षेप भी बढ़ा है और उसके साथ स्कूलों से अभिभावकों की अपेक्षाएं भी बढ़ी हैं। जैसे–जैसे शिक्षा के क्षेत्र में निजी स्कूलों की संख्या बढ़ी है, उनमें प्रतिस्पर्धा भी आई है और उनमें अभिभावकों को आकर्षित करने के लिए तरह–तरह की चीजें की जाने लगीं हैं, जैसे अच्छे भवनों का निर्माण, खेलने के लिए सुविधाओं का होना, कक्षा–कक्ष में आरामदायक कुर्सियों एवं मेजों की व्यवस्था आदि। यह अच्छी बात है लेकिन क्या इन सारी सुविधाओं को मुहैया करा देना भर अभिभावकों की अपेक्षाओं को पूरा कर देना है। सवाल यह भी उठता है कि क्या अभिभावकों की सारी अपेक्षाओं को पूरा करना स्कूल की जिम्मेदारी है। यदि ऐसा मान भी लिया जाए तो यह कैसे तय हो कि कौन–सी अपेक्षाएं जायज हैं और कौन–सी अपेक्षाएं जायज नहीं हैं या फिर क्या सभी अभिभावकों की अपेक्षाएं एक जैसी होती हैं। ये काफी मुश्किल सवाल हैं। इनके जवाब खोजने में वक्त लगेगा। स्कूल को अपने असली मकसद को ध्यान में रखना होगा और उसे यह भी सोचना होगा कि अभिभावकों को साथ लेकर बच्चों की शिक्षा के लिए बेहतर प्रयास कैसे किए जा सकते हैं।

स्कूल से अभिभावकों की जो अपेक्षाएं हैं, उनका दबाव शिक्षक एवं स्कूल पर दिखाई देता है। शायद ये अपेक्षाएं भौतिक सुविधाओं से आगे की मांग भी करती हैं, परंतु क्या यह संभव है कि स्कूल अभिभावकों की अपेक्षाओं को सही दिशा दे सकें। आगे मैं इसी सवाल के आसपास अपनी बात कहने की कोशिश करूंगी।

अब से लगभग दस साल पहले मुझे प्राईमरी कक्षा के बच्चों को पढ़ाने का मौका मिला। वहां मैंने एक वर्ष तक 4–5 साल के छोटे बच्चों को पढ़ाया। उसके बाद मुझे सरकारी स्कूलों एवं निजी स्कूलों के शिक्षकों के साथ कईं मौकों पर संवाद के अवसर भी मिले।

स्कूल में कार्य अनुभव के दौरान मैंने पाया कि अच्छी इमारत, आरामदायक कक्षा–कक्ष या खेलने के बड़े–बड़े

मैदान आदि अभिभावकों के लिए स्कूल में दाखिले के समय तो आकर्षण का केंद्र बनते हैं, परंतु उसके बाद अभिभावकों की सारी अपेक्षाएं बच्चों के परीक्षा परिणामों से जुड़ जाती हैं। यानि वे वर्षभर के दौरान और अकादमिक वर्ष के खत्म होने पर बेसब्री से ये देखने का इंतजार करते हैं कि बच्चों के परीक्षा परिणाम क्या रहे अर्थात कितने नंबर आए। यहां तक कि 'अभिभावक–शिक्षक बैठक' के नाम पर भी जब अभिभावक स्कूल में आते हैं तो वे बच्चों के नंबरों के माध्यम से ही उनके सीखने या न सीखने के बारे में अपनी राय बनाते हैं। स्कूल में रहते हुए एक बच्चा पढ़ने–लिखने के अतिरिक्त और कितनी ही चीजें सीखता है, इस पर कितने अभिभावकों का ध्यान जाता होगा, यह कहना मुश्किल है। शायद स्कूल भी इस बारे में नहीं सोचते हैं।

एक वाकया जो मुझे दस साल बीत जाने के बाद अब भी याद है, वह इसी बात को रेखांकित करता है। मेरी कक्षा में दो बच्चे एक ही परिवार से थे, चचेरे भाई–बहन; शुभम और कृतिका। कक्षा में कुल मिलाकर पंद्रह बच्चे थे; सात लड़के व आठ लड़कियां। प्रतिदिन स्कूल की शुरुआत प्रार्थना से होती। उसके बाद सब बच्चे लाईन लगाकर कक्षा में जाते। चूंकि बच्चे छोटे थे और कक्षा पहले माले पर लगा करती थी इसलिए मैं बच्चों के साथ जाया करती। कक्षा में पहुंचने के बाद सभी बच्चे योजनानुसार अपनी किताब–कॉपी निकालते और मेरे निर्देशों का इंतजार करते। इन सब कामों को करने के दौरान कृतिका हमेशा ही आगे रहती; प्रार्थना की लाईन में आगे खड़े होना, जल्दी–जल्दी सीढ़ियां चढ़ जाना, अपनी जगह पर बैठकर काम करने के लिए तैयार होना आदि। साथ ही वह लिखने और पढ़ने में भी तेज थी, कक्षा में बातें भी खूब बनाया करती। इसके उलट शुभम हर काम में पीछे ही रहा करता। ऐसा लगता, जैसे उसे किसी चीज में मजा नहीं आता। क्लास में भी गुमसुम और शांत रहता। कई बार बातचीत की कोशिश के बाद भी ये समझ नहीं आया कि आखिर वह चाहता क्या है।

ड्राईंग करना अमूमन बच्चे पसंद करते हैं। मेरी क्लास में भी लगभग सभी बच्चों को ड्राईंग करने का काफी शौक था। मैं हमेशा ही ड्राईंग के काम को दो कारणों से अंत के लिए रखा करती; पहला ड्राईंग करने के लिए सभी बच्चे पहले मिले काम को जल्दी से खत्म करने की कोशिश करते और दूसरा छुट्टी के बाद सभी बच्चे खुश–खुश घर वापस लौटते। शुभम अपना काम काफी धीमी गति से करता था इसलिए वह बाकी बच्चों के बाद ड्राईंग शुरू करता, इससे उसे ड्राईंग करने का समय भी कम ही मिलता। एक दिन उसने अपना काम लगभग सभी बच्चों के साथ पूरा किया और उन्हीं के साथ ड्राईंग का काम भी शुरू किया। मैंने गौर किया कि उस दिन शुभम बहुत खुश था। उसने ड्राईंग भी काफी अच्छी की। उसके बाद मैंने यह ध्यान देना शुरू किया कि उसे ड्राईंग करना काफी पसंद था। केवल एक ड्राईंग ही थी जिसे करने में उसे भरपूर मजा और खुशी मिलती। इस बात पर मेरा ध्यान शायद उस दिन से पहले कभी नहीं गया था। उसके बाद मैंने उसके पहले के बनाए हुए चित्रों को भी देखा और पाया कि उसने वो भी बहुत अच्छे बना रखे थे। इस कला के प्रति उसकी रुचि ने मुझे भी थोड़ा संतोष दिया कि कम से कम मेरी कक्षा में कोई एक काम तो ऐसा है जिसे करने में उसे वाकई कुछ खुशी मिलती है।



जब छमाही परीक्षा लेने का समय आया तो मैंने भी अपनी कक्षा में बच्चों की परीक्षाएं ली। जैसे कि सभी स्कूलों में परीक्षा परिणामों को साझा करने के लिए एक दिन

तय किया जाता है और उसकी सूचना अभिभावकों तक पहुंचा दी जाती है। हमारे यहां भी कुछ इसी तरह का तरीका काम में लिया गया और अंततः वह दिन भी आ गया, जब इन दोनों बच्चों के अभिभावक मेरे सामने बैठे थे। मैंने एक–एक कर दोनों से ही उनके बच्चों के परीक्षा परिणामों को साझा किया।

शुभम के अंक काफी कम आए थे। उसकी मां मुझ पर नाराज हो रही थीं। उनका जोर इस बात पर था कि शुभम के इतने कम नंबर कैसे आए, जबकि उसकी चचेरी बहन के नंबर उससे कहीं अधिक हैं। दोनों बच्चों को आप ही पढ़ाती हैं और मेरे बेटे को तो मैं घर पर भी खूब पढ़ाती हूं। फिर ये पीछे कैसे रह गया। वहीं दूसरी ओर कृतिका के माता–पिता उसे मिले अंकों को देख काफी खुश थे पर साथ ही अगली परीक्षा में और अधिक मेहनत करने की हिदायत दे रहे थे, ताकि कक्षा में उसके सबसे अधिक अंक आ सकें। मैंने शुभम की मां को समझाने का प्रयास किया कि मैं उसे बाकी विषयों में सिखाने का प्रयास कर रही हूं पर वे देखें कि शुभम की ड्राईंग कक्षा में शायद सबसे अच्छी है। अभी मैं उसे ड्राईंग करने का सबसे अधिक मौका देती हूं क्योंकि उसे इसमें मजा आता है और वह यही करते रहना चाहता है। इस बात पर भी उन्होंने काफी नाराजगी जाहिर की और कहा कि आप ही जब क्लास में ऐसा करेंगी तो वह कैसे सीखेगा। उन्होंने उसके कला पक्ष पर कोई ध्यान तक नहीं दिया, क्योंकि उसमें नंबर देने का कोई रिवाज नहीं है।



बाद में जब शुभम मुझसे खुलकर बात करने लगा तब पता चला कि उसे घर पर सारा समय हिंदी, अंग्रेजी और गणित पढ़ने पड़ते हैं। उसने यह भी बताया कि कृतिका अपना काम करने बाद खूब खेलती है और टी.वी़ देखती है। उसे यह सब करता देख उसका घर पर पढ़ाई में मन नहीं लगता। और जब उसे स्कूल में पढ़ाया जाता है तो भी वह इन सभी विषयों को पढ़ना नहीं चाहता।

मैंने इस बारे में शुभम की मां से बात की। उन्हें समझाने की कोशिश की कि वे शुभम पर पढ़ाई का अन्यथा बोझ न डालें। वे उसे वह सब (जैसे ड्राईंग) करने का मौका दें जो वह करना चाहता है, जिससे वह बाद में दूसरे विषयों की बारी आने पर उन्हें करने में अपना मन लगा सके। मैं उन्हें कितना समझा पाई, पता नहीं। हालांकि, अकादमिक वर्ष खत्म होते–होते शुभम भी बाकी विषयों में कुछ–कुछ रुचि जाहिर करने लगा था और थोड़ा ही सही पर पहले से कुछ आगे बढ़ पाया था।

जब मैं शुभम की मां की परीक्षा परिणामों पर प्रतिक्रिया को याद करती हूं तो उसके तीन मुख्य कारण समझ में आते हैं। पहला, शिक्षा के बारे में अभिभावकों की समझ, जो अच्छी नौकरी (अर्थात जिसमें ज्यादा पैसा मिले) पा लेने भर को शिक्षा के एकमात्र उद्देश्य के रूप में देखते

हैं, और ऐसी नौकरी को तो अच्छे नंबरों के बूते पर ही हासिल किया जाता है। दूसरा, बाहरी दुनिया के बच्चों के साथ तुलना करना और तीसरा, स्कूलों द्वारा एक खास तरह की संस्कृति का निर्माण। यह बात तो दस साल पहले की है, परंतु वर्तमान में भी इस तरह के उदाहरण बहुतायत में देखे जा सकते हैं। इसमें गौर किए जाने लायक बात यह है कि अभिभावकों की बच्चों से किन्हीं खास विषयों में अच्छे नंबर लाने की अपेक्षाएं और उनकी दूसरे बच्चों के साथ तुलना करने की आदत कई बार उन पर अनावश्यक दबाव डालती है। खासतौर पर बाल–मन पर इसके कई विपरीत प्रभाव पड़ते हैं, जिसके चलते धीरे–धीरे उनकी रुचि न केवल खत्म हो जाती है बल्कि वे गुमसुम चुपचाप से रहने लगते हैं, जैसा कि शुभम के साथ हो रहा था।

क्या अभिभावक ये समझते हैं कि सभी बच्चे पढ़ने–लिखने में एक जैसे नहीं होते। अभिभावकों की छोड़ें, क्या शिक्षक इस बात को समझते हैं? अलग–अलग बच्चों की क्षमताएं अलग–अलग होती हैं और उन्हें पहचानना अभिभावकों एवं शिक्षकों की जिम्मेदारी है। क्या ये दोनों अपनी भूमिका पूरी कर पाते हैं? कई बार ऐसा भी होता है कि शिक्षक तो इस बात को समझता है परंतु उसके लिए अभिभावकों को यह समझा पाना बहुत मुश्किल हो जाता है। जिस सामाजिक संदर्भ से वे आते हैं, वहां तो शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य ही अच्छे अंकों से पास होना रह गया है, जिसके बलबूते पर एक अच्छी नौकरी पाई जा सके।

आज भी कभी जब प्राईवेट या सरकारी स्कूल में जाना होता है और वहां अभिभावकों की शिक्षकों से होने वाली बातचीत सुनने का मौका मिलता है तो मुझे यह प्रसंग याद आ जाता है। चूंकि इस तरह की बातचीत का अधिकांश हिस्सा माता–पिता द्वारा बच्चों की पढ़ाई–लिखाई में आए नंबरों के पूछे जाने या फिर शिक्षक/शिक्षिका द्वारा बच्चे के पढ़ाई में ध्यान न देने की शिकायत के इर्द–गिर्द ही घूमता रहता है। ऐसी स्थिति में मेरे मन में कई बार ये सवाल उठता है कि स्कूल और अभिभावक के बीच किस तरह से ऐसा रिश्ता बन सकता है जो बच्चों की पढ़ाई में मददगार हो सके।

वर्तमान समय में अभिभावकों की स्कूल में भागीदारी तो बढ़ी है परंतु वह एक एकांगी नजरिए से ही चीजों को एक्सप्लोर करती है। क्या ऐसा समग्र नजरिया संभव है, जो बच्चे के विकास में अधिक मददगार हो सके और केवल कुछ विषयों को पढ़ाने और उनको जांचकर परिणामों को बता देने भर से आगे बढ़ सके। मुझे ऐसा लगता है कि यह संभव तो है परंतु इसके लिए स्कूल को अधिक सचेत प्रयास करने पड़ेंगे और परिणामों के लिए उसे थोड़ा लंबा इंतजार करना होगा। स्कूल को अपने शिक्षकों में इसके लिए जागरूकता लानी होगी कि वे अभिभावक–शिक्षक बैठक में केवल बच्चों के परीक्षा परिणामों की सूचना देने की बजाय उन परिणामों के कारणों की तलाश भी अभिभावकों के साथ मिलकर करें। बच्चे की आदतों व रुचियों को भी चर्चा के दायरे में लाया जाए, जिनका असर उसकी पढ़ाई पर भी पड़ता है और उनके साथ समग्रता में बातचीत की जाए।

यह संभव है कि हमें पी.टी.एम. के स्वरूप व समय में भी बदलाव करना पड़े और एक ही दिन सारे स्कूल की पी.टी.एम. करने की बजाय प्रत्येक महीने किन्हीं एक या दो कक्षाओं के बच्चों के अभिभावकों के साथ बातचीत की जाए। इसका असर यह होगा कि शिक्षकों पर काम का बहुत अधिक बोझ नहीं आएगा। उनके पास पर्याप्त समय होगा, जिससे वे अभिभावकों के साथ आराम से बात कर सकेंगे और शिक्षकों के लिए भी यह औपचारिकता मात्र नहीं रह जाएगा। यह एक रास्ता हो सकता है। और तरीके भी इस दिशा में सोचे जा सकते हैं, जिन्हें प्रयोग में लाकर देखा जाना चाहिए। यदि अभिभावक व शिक्षक के बीच में इस तरह की साझेदारी पनपना शुरू होती है तो यह धीरे–धीरे उस बात को चरित्तार्थ करने की दिशा में आगे बढ़ेगी, जिसकी बात एन.सी.एफ. 2005 करता है।

निशी : पिछले दस वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में कार्यरत हैं। अलग–अलग संस्थाओं के साथ काम करने का उनका अनुभव रहा है। वे बच्चों व शिक्षकों के साथ विज्ञान के विभिन्न पहलुओं को लेकर कार्य करती रही हैं। वर्तमान में दिगंतर, जयपुर की अकादमिक संदर्भ इकाई में अस्सिटेंट फैलो के पद पर कार्यरत हैं।